सम्पादकीय

मुझे आज बड़ी प्रसन्नता है कि जिस षट्खंडागम और उसकी टीका धवलाका सम्पादन प्रकाशन कार्य आजसे बीस वर्ष पूर्व सन् १९३८ में प्रारम्भ हुआ था, वह आज प्रस्तुत भागके साथ सम्पूर्णताको प्राप्त हो रहा है। किन्तु ज्ञानकी दृष्टिसे यह कार्य केवल हमारे कर्तव्यकी प्रथम सीढ़ी मात्र है। इस प्रकाशनके द्वारा जिस महान शास्त्रीय रचनाका मूल पाठ, उसका मूलानुगामी अनुवाद, यत्र तत्र स्पष्टीकरण व तुलनात्मक टिप्पण तथा कुछ ऐतिहासिक विवेचन व पारिभाषिक शब्दोंकी सूचियाँ मात्र प्रस्तुत की जा सकी हैं। हमारे विचारके अनुसार अभी इसके सम्बन्धमें विशेष रूपसे निम्न कार्य अवशिष्ट है --

१ - इसके मूल पाठका एक बार सावधानीसे मूडबिद्रीकी तीन उपलभ्य ताड़पत्रीय प्रतियोंसे मिलान व पाठभेदोंका अंकन। इस कार्यके लिए उक्त प्रतियोंके फोटोका भी उपयोग किया जा सकता है।

२ - इसके विषयका समस्त जैन कर्मसिद्धान्तसम्बन्धी दिगम्बर और श्वेताम्बर तथा वैदिक व बौद्ध साहित्य के साथ तुलनात्मक अध्ययन व पाश्चात्य दर्शन प्रणालीसे उसका विवेचन।

३ - सूत्रों और टीकाका प्राकृत भाषासम्बन्धी अध्ययन

मुझे आशा है कि वर्तमान युगकी बढ़ती हुई ज्ञानपिपासा तथा विशेष अध्ययनकी ओर अभिरुचि व प्रोत्साहनको देखते हुए उक्त प्रवृत्तियोंको हाथ लगानेमें विलम्ब न होगा।

यद्यपि प्रत्येक भागके साथ भूमिकामें ग्रन्थसम्बन्धी ऐतिहासिक विवरण व विषय परिचय दिया गया है एवं परिशिष्टोंमें शब्दसूचियाँ, तथापि मेरा विचार था कि प्रस्तुत अन्तिम भागमें उक्त सामग्रीका पुनरावलोकनसहित संकलन दे दिया जाय। तदनुसार पारिभाषिक शब्दसूची संकलित करके इस भागके साथ प्रस्तुत की जा रही है। प्रस्तावनात्मक सामग्रीका भी संकलनकार्य चालू किया गया था। किन्तु इसी बीच मेरा स्वास्थ्य गिरने लगा और मुझे डॉक्टरोंका आदेश मिला कि कुछ कालके लिये कठोर मानसिक व शारीरिक परिश्रम त्यागकर विश्राम किया जाय, नहीं तो प्रकृति और अधिक बिगड़नेका भय है। इस कारण उस सुविस्तृत भूमिकाका विचार छोड़कर एवं इस प्रकाशनमें अधिक विलम्ब उचित न समझकर इस भागको

प्रकाशित किया जा रहा है। यदि विधि अनुकूल रहा तो उक्त कार्य भविष्यमें कभी पूर्ण करनेका प्रयत्न किया जायेगा। आवश्यक ऐतिहासिक व विषय-परिचयसंबंधी जानकारी भिन्न भिन्न भागोंमें संगृहीत है ही।

इस समय स्वभावतः मेरी स्मृति इस संपादन प्रकाशनके गत बीस वर्षके इतिहास पर जा रही है। सफल और धन्य हैं वह श्रीमंत सेठ सिताबराय लक्ष्मीचन्द्र जी, भेलसा, की संपत्ति जिसके थोड़ेसे दानसे यह महान शास्त्रोद्धारक कार्य हो सका। वे गजरथ महोत्सव कराने जा रहे थे कि मेरे परम सुहृत् बैरिस्टर जमुनाप्रसाद जैनने इटारसी परिषद्के अधिवेशनके समय उनकी सद्बुद्धिको यह मोड़ दिया। गजरथ आज भी चलाये जा रहे हैं और उनमें अपरिमित धन व्यय किया जा रहा है। पाठक विचार कर देखें कि आज दानकी प्रवृत्ति किस दिशामें सार्थक है। पश्चाते भेलसानिवासी श्रीमान स्वर्गीय सेठ राजमलजी व श्रीमान तखतमल जी (वर्तमान मध्य प्रदेशी मंत्रिमंडलके सदस्य) ने सेठ लक्ष्मीचंद जीकी उस सद्बुद्धिको सुदृढ़ और व्यवस्थित करके दानकी रजिस्ट्री करा दी। सम्पादन कार्यमें प्रारम्भमें अमरावतीनिवासी स्वर्गीय सेठ पन्नालालजीका साहाय्य व प्रोत्साहन कभी भूला नहीं जा सकता। इन्होंने मानो इसी कार्यके लिए अपने मन्दिरजीके शास्त्र भंडारमें इस आगमकी पूर्ण प्रतिलिपि कराकर मंगा रखी थी । उसे तुरन्त उन्होंने मेरे सुपूर्द कर दिया। उनका यह कार्य उस समय कम साहसका नहीं था, क्योंकि भ्रान्तिवश हमारी विद्वत्समाजका एक दल इन ग्रन्थोंके प्रकाशनही नहीं, किन्तु किसी गृहस्थके द्वारा इनके अध्ययनका भी कट्टर विरोधी था और उस विरोधने क्रियात्मक रूप धारण कर लिया था। सेठ पन्नालालजी व अमरावती जैन पंचायतके अनुसार कारंजा जैन आश्रम तथा सिद्धान्त भवन, आरा, के अधिकारियोंने भी हमें उनकी प्रतियोंका उपयोग करनेकी सुविधा प्रदान की। प्रकाशनसम्बन्धी कागज, छपाई आदि विषयक कठिनाइयोंके हल करनेमें पं. नाथूरामजी प्रेमीका वरदहस्त सदैव हमारे ऊपर रहा। यही नहीं, बीचमें आर्थिक कठिनाईको दूर करने, मुद्रणकार्य बंबईमें कराने व अपने घरपर दफ्तर रखने में भी वे नहीं हिचकिचाये।

मेरे सम्पादक सहयोगियोंमेंसे डॉ. ए. एन्. उपाध्ये प्रारम्भसे अभीतक मेरे साथ हैं। पं. फूलचन्दजी शास्त्रीका सहयोग भी आदिसे, बीचमें कुछ वर्षोंके विच्छेदके पश्चात्, अभी भी मुझे मिल रहा है। पं. बालचन्द्रजी शास्त्रीका भी जबसे सहयोग प्राप्त हुआ तबसे अन्ततक निरन्तर निभता गया। स्वर्गीय पं. देवकीनन्दन जी शास्त्री का भी आदिसे उनके देहावसान होनेतक मुझे

पूर्ण सहयोग मिलता रहा। पं. हीरालालजी शास्त्रीका सहयोग इस कार्यके प्रारम्भमें बहुमूल्य रहा। किन्तु खेद है वह सहयोग अन्ततक न निभ सका। मैंने इन सब व्यक्तियों और घटनाओंका केवल संकेत मात्र किया है। तत्तत्सम्बन्धी आज सैंकड़ो प्रिय-अप्रिय एवं साधक-बाधक घटनाएँ मेरे स्मृति-पटल पर नाच रही हैं। किन्तु 'जिसका अन्त भला, वह सर्वांग भला' की उक्ति के अनुसार उस समस्त इतिहासमें मुझे माधुर्य ही माधुर्यका अनुभव हो रहा है।

जिन पुरुषोंका मैं ऊपर उल्लेख कर आया हूँ उन्हें किन शब्दोंमें धन्यवाद दूँ। बस यही एक भावना और प्रार्थना है कि जिनवाणीकी सेवामें उन्होंने अपना जैसा तन, मन, धन लगाया है, वैसा ही वे आजन्म लगाते रहें जिससे उनके ज्ञानावरणीय कर्मोंका क्षय हो और वे निर्मल इ ाान प्राप्त कर पूर्ण आत्मकल्याण करनेमें सफल हों।

१-५-१९५८ हीरालाल जैन